विस्मृता

डॉ० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

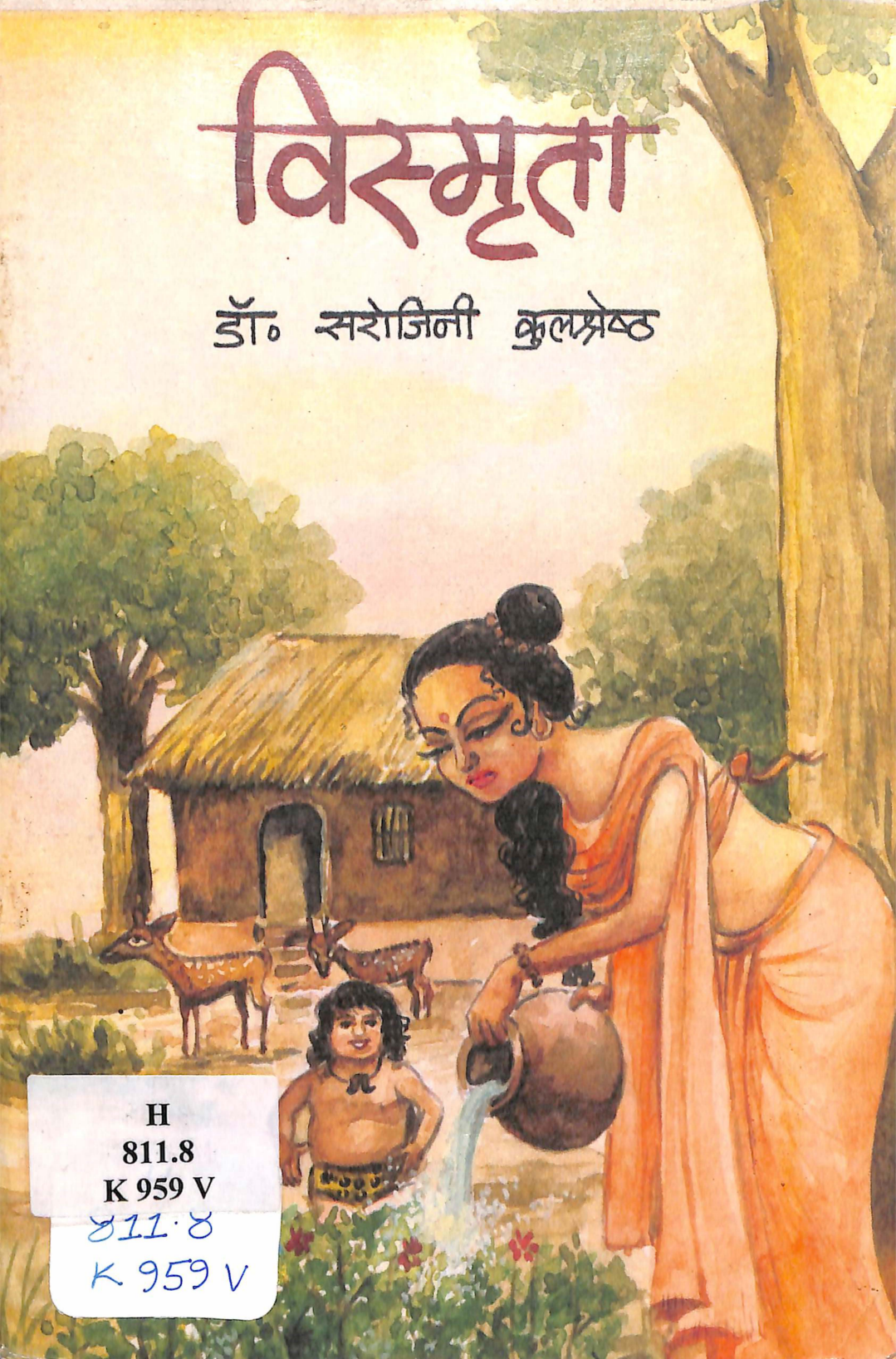

H
811.8
K 959 V
811·8
K 959 V

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY, SHIMLA

विस्मृता

CATALOGUED

डॉ. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

प्रकाशक ☎2055312

कवि सभा

30/106, गली नं.7, विश्वास नगर, शाहदरा दिल्ली-110032

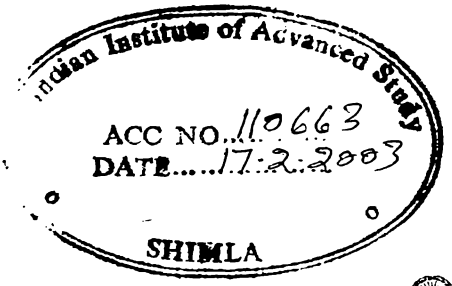

H
811.8
K 959 V

Library IIAS, Shimla
H 811.8 K 959 V
00110663

© लेखिका

मूल्य	25.00 रुपये
प्रथम संस्करण	2000
प्रकाशक	कवि सभा 30/106, गली नं.7, विश्वास नगर शाहदरा, दिल्ली–110032
दूरभाष	2055312
अक्षर संयोजन	एस.एस.क्रियेशन, ईस्ट रोहताश नगर शाहदरा, दिल्ली–32, दूरभाषः 2283649
आवरण	श्याम जगोता
मुद्रक	आर.के.ऑफसेट शाहदरा, दिल्ली–32

VISMRITA
By **DR. SAROJINI KULSHRESTHA**

अपनी बात

'श्रीमद्भागवत' में पुरूवंशी दुष्यंत की कथा अत्यन्त संक्षेप में कही गयी है। एक बार वे शिकार खेलने के लिए जाते समय कण्व ऋषि के आश्रम में जा पहुँचे। वहीं सुन्दरी शकुन्तला उन्हें बैठी हुई मिली। वे मोहित हो गये। जैसे रामचरितमानस में श्री राम ने लक्ष्मण से सीता को देखने के बाद कहा था– 'रघुवंशिनभर सहज सुभाहू , मन कुपंथ पग पैरे न काहू' , इसी प्रकार यहाँ शकुन्तला को देखकर दुष्यंत उसको क्षत्रिय की ही कन्या समझते हैं क्योंकि उन्हें विश्वास है कि पुरूवंशियों का चित्त कभी अधर्म की ओर नहीं झुकता। शकुन्तला परिचय में अपने को पिता विश्वामित्र और मेनका अप्सरा की पुत्री बताती है। दोनों में प्रेम होता है तथा वे गन्धर्व विवाह रचा लेते हैं। दुष्यंत अपने राज्य में लौट जाते हैं। समय आने पर शकुन्तला एक पुत्र को जन्म देती हैं। उसी पुत्र को लेकर वह दुष्यंत के पास जाती है परन्तु वे उसे स्वीकार नहीं करते। तब आकाशवाणी होती है कि 'पुत्र वास्तव में पिता का ही होता है' तब दुष्यंत दोनों को स्वीकार करते हैं। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', में महाकवि कालिदास ने नाटकीय रूप संवारने के उद्देश्य से इस कथा में परिवर्तन किया है। सामन्तयुगीन राजा ऐसी भारी भूल नहीं कर सकता था इसलिए अंगूठी को मछली के पेट में चले जाने का उपक्रम करना पड़ा अर्थात् शकुन्तला को भूल जाने में उनका नहीं वरन् अंगूठी का खो जाना कारण बना। मुझे यह बात चुभ गई अतः इस लघु काव्य में उस प्रंसग को उठाया ही नहीं। भूलना तो पुरुष का स्वभाव है। 'भोग लिया और भूल गये' शकुन्तला जैसा कहती है, हर पुरुष वैसा ही होता है। पर्याप्त समय तक साथ निभाने वाली का परित्याग कर देता है तो यह समागम तो 'श्रीमद्भागवत' के अनुसार केवल एक दिन का ही था। इतने छोटे क्षण में भोगे हुए सुख का अथवा भोग्या नारी के रूप–गुण का एक राजा को क्या ध्यान रहता। उनके सामने तो सैकड़ों चेहरे अलटते–पलटते रहते थे।

'विस्मृता' में भूली हुई याद कैसे आई इसके लिए मैंने एक सैनिक की परित्यक्ता पत्नी की कहानी गढ़ी है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में कालिदास ने दुष्यंत से परित्यक्त होने के बाद रोती हुई शकुन्तला को किसी अप्सरा द्वारा उड़ाकर ले जाते हुए चित्रित किया है। वैसा मैंने भी किया है। राजा

दुष्यंत शकुन्तला से अप्सरा तीर्थ में ही मिलते हैं। वहीं भरत शेर के साथ खेलता दिखाई देता है।

शकुन्तला दुष्यंत के साथ अंत में अपने पुत्र भरत को लेकर चली गई होगी। सभी ग्रंथों ने प्रायः ऐसा ही कहा है परन्तु मैंने आधुनिक स्वाभिमानिनी नारी का रूप देने के कारण उसे आश्रम की सेवा करते दिखाया है। फिर राजाओं के रनिवास में रानियों की क्या कमी। सीता–जैसी पतिव्रता को भी जब राम ने वनवास दे दिया था क्योंकि उन्हें लोकापवाद का भय था; तो क्या शकुन्तला के चरित्र पर राज्य में जाकर लांछन न लग जाता। राजा को तो युवराज की आवश्यकता थी। फिर वह पिता–पुत्र के मध्य क्यों ख़ड़ी हो। क्यों न पुत्र को उसका प्राप्य दिलवाये? इसी प्रकार के कुछ प्रश्नों को मैंने इस लघु काव्य में उठाया है।

पुरुष को सौन्दर्य और काम लोलुप दिखाना आवश्यक था। क्योंकि आज भी पुरुष इसी रूप में विद्यमान है। इस नाते इसका शीर्षक कुछ और ही होना चाहिये था परन्तु मैंने उस पर अधिक दोषारोपण न करके सीधा सादा 'विस्मृता' शीर्षक दे दिया है। भूल गया बेचारा। जान बूझकर राजा ने शकुन्तला को नहीं सताया।

'विस्मृता' शकुन्तला की कथा होकर भी शकुन्तला की नहीं रहती। यह आज की नारी की व्यथा–कथा बन जाती है। मैंने तो केवल नारी की व्यथा कही है। नहीं जानती कि किस रूप में कही है। यह लघु काव्य बन पड़ा है या खण्डकाव्य में यह भी निश्चित रूप से नहीं कह सकती। अब तो यह पाठकों के सम्मुख आ रहा है अतः वे ही इसका निर्णय करेंगे। इसकी व्यथा उन्हें किंचित भी छू लेगी तो मैं अपना प्रयास सफल मानूँगी।

डॉ. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ
सरोजनिलयम्
दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
मथुरा–281001(उ.प्र.)

भूमिका

'विस्मृता' नामक प्रस्तुत कृति हिन्दी–जगत् की सुपरिचित विदुषी डॉ॰ सरोजिनी कुलश्रेष्ठ द्वारा प्रणीत एक लघु काव्य है। इससे पूर्व आपकी विविध विधाओं में अनेक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी है, जिन्हें हिन्दी–जगत् में समादर प्राप्त हुआ है।

'विस्मृता' लघु काव्य का कथानक पुरूवंशी नृप दुष्यंत और शकुन्तला के आख्यान से सम्बद्ध है। इसके आद्यन्त पारायण के उपरान्त ज्ञात होता है कि कवयित्री ने पूर्वतः चली आ रही इसकी कथावस्तु में विचलन करके इस कथा को युगानुकूल बनाने का प्रयास किया है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में महाकवि कालिदास ने अंगूठी का आख्यान संलग्न करके राजा दुष्यंत को विस्मरण अपराध से मुक्त करने का जो उपक्रम किया था, उस उपक्रम को इस काव्य के कथा–सूत्र से विलग करके कवयित्री ने अपने कौशल और अदम्य साहस का परिचय दिया है।

किसी व्यक्ति का अपराध बोध उस समय सिर चढ़कर बोलने लगता है जब किसी निस्सीम वेदना का झोंका उसके पर्यानुकूल रस तत्वों का सृजन कर देता है। पूर्वतः चली आ रही कथा में अंगूठी का गिरना उसे मछली द्वारा निगलना, उस अंगूठी का राजा तक पहुंचना और अंगूठी मिलते ही राजा को पूर्व के सभी प्रणय–प्रसंगों का स्मरण हो आना आदि का इस लघु काव्य में उल्लेख न करके कवयित्री द्वारा एक सैनिक की परित्यक्ता पत्नी द्वारा करुण रोदन की घटना को संयोजित किया गया है जिसके माध्यम से राजा दुष्यंत को शकुन्तला का स्मरण हो आता है। फिर वे उसे खोजने के लिए निकल पड़ते हैं।

कवयित्री ने एक ओर जहां इस आख्यान में शकुन्तला के साथ राजा दुष्यंत द्वारा किए गए घोर अनर्थ को सुधी पाठकों के समक्ष रखने का सार्थक प्रयास किया है, वहीं शकुन्तला की व्यष्टिगत पीड़ा उसकी अपनी न रहकर समष्टिगत रूप को प्राप्त होते हुए आज के वैभव सम्पन्न दुष्यन्तों की नारी भोग्या प्रवृत्ति की कलई खोलती है। इस सीमा तक पहुंचते–पहुंचते यह काव्य विश्व नारी की पीड़ा का प्रतिनिधित्व करने लगता है। कवयित्री ने शकुन्तला के माध्यम से आज के प्रगतिशील और

वैज्ञानिक युग में नारी की इस समस्या को नये सन्दर्भो में प्रस्तुत करके निश्चय ही एक नये अभियान का आरंभ किया है।

यह लघु काव्य मुख्यरूप से नायिका प्रधान है इसलिए इसमें कण्व ऋषि के आश्रम में पली शकुन्तला के बाल्यकाल, किशोरावस्था और यौवनकाल के हृदयस्पर्शी चित्रण सुन्दरतम रूप में प्रस्तुत हुए हैं, जो पाठकों को अनायास ही आकर्षित करने में सक्षम सिद्ध होंगे। शकुन्तला की किशोरावस्था का सहज और मनोरम चित्रण द्रष्टव्य है–

क़ंचन–वर्णा मृगनयनी वह,
चपल बालिका प्यारी।
हुई किशोरी धीरे–धीरे,
ज्यों केसर की क्यारी।। (पृष्ठ : 16)

इस लघु काव्य में जहाँ कवयित्री ने प्रकृति के मनोहर दृश्यों का चित्रण किया है वहीं शकुन्तला और दुष्यंत के संयोग का निस्सीम आनन्द पाठकों के हृदय को पुलकित कर देता है तो वियोग की असय वेदना पाठक को बेचैन कर देती है। दोनों के गन्धर्व विवाह की झांकी इस प्रकार उपन्यस्त है–

शुभ गन्धर्व विवाह रचाया
वसुधा ने श्रृंगार किया।
बरसे सुमन लताओं से ज्यों,
शुभाशीष उपहार दिया।। (पृष्ठ : 26)

यह कहना असमीचीन, न होगा कि प्रस्तुत काव्य की कहानी भारतीय नारी के प्रेम और समर्पण की कहानी है, जिसमें नारी पुरुष का विश्वास करके उसके प्रणय सूत्र में बंध जाती है और उस प्रणय पंथ पर अपना तन–मन निछावर कर देती है–

इस बाला ने प्रेम पंथ पर
अपना तन–मन वार दिया।
एक दृष्टि के अनुबन्धन में,
सारा जीवन हार दिया।। (पृष्ठ : 27)

शकुन्तला को विदा करते समय कण्व ऋषि की आंखें छलछला आती हैं। यह अत्यंत स्वाभाविक और हृदय स्पर्शी वर्णन है। कण्व ऋषि ही नहीं वन में रहने वाले सभी पशु–पक्षी उसकी विदाई पर करुणाजन्य वेदना से व्यथित हो उठते हैं–

जिस मृग को पाला था पागल,
दौड़ा – दौड़ा आया।
लगा खींचने उत्तरीय को,
करुणा से था अकुलाया।। (पृष्ठ : 32)

काव्य–कथा उस समय एक चमत्कारी मोड़ ले लेती है जब अप्सरा तीर्थ में राजा दुष्यंत की शकुन्तला से भेंट होती है और राजा दुष्यंत उससे अपने अपराध के लिए क्षमा याचना करते हैं। उस समय शकुन्तला दुष्यंत को जो सटीक उत्तर देती है, लगता है कि वह उत्तर मात्र शकुन्तला का न होकर समस्त नारी वर्ग का है और वह उत्तर मात्र दुष्यंत के लिए नहीं प्रत्युत समस्त पुरुष वर्ग के लिए है। राजा दुष्यंत द्वारा क्षमा याचना करने पर भी शकुन्तला राजा दुष्यंत के साथ जाने से मना कर देती है। वह पिता और पुत्र के बीच से अपने को मुक्त करने का संकल्प लेकर पुत्र का हाथ दुष्यंत के हाथों में पकड़ा देती है। यहाँ पितृ–वियोग का करुण चित्रण पाठकों को पिघला देता है–

हाथ पकड़कर भरत पुत्र का,
पकड़ा दिया पिता कर में।
आँसू सोख लिए आँखों में,
व्यथा घूँट ली अन्तर में। (पृष्ठ : 45)

यह लघु काव्य यद्यपि शकुन्तला के जीवन के विविध पक्षों, सद्‌गुणों और उसकी महानता पर प्रकाश डालता है, तथापि कवयित्री का प्रयोजन शकुन्तला के माध्यम से नारी जाति के आदर्श को महान रूप में अभिव्यक्त करने का है, जिसमें उन्हें यथापेक्षित सफलता भी मिली है। नारी की महानता में उनकी निम्नलिखित काव्य–पक्तियाँ उल्लेखनीय है–

मानवता की धात्री बनकर,
देती जग को दान है।
हाय उपेक्षित होने पर भी,
नारी सदा महान है।। (पृष्ठ : 46)

काव्य में यथाप्रसंग चाक्षुष विम्ब योजना, अनुप्रास एवं मानवीयकरण अलंकारों का सफल निर्वाह पाठक को कथा प्रसंग के साथ आदि से अन्त तक बाँधे रखता है। मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि यह लघु काव्य काव्य–रसिकों को अवश्य ही पसंद आयेगा।

शांति स्वरूप 'कुसुम'

कुसुम निकेतन
जगदीशपुरी, गली नं.1
गांधी रोड, बड़ौत(मेरठ)–250611
फोन – (01234)62217

विस्मृता

ॐ

श्री गणेशाय नमः

विस्मृता

प्रकृति प्रांगण में मनोरम
छा रहा मधुमास।
खग चहकते डालियों पर
भर रहे उल्लास।।

चौकड़ी भरते मृगी मृग
रहे वन में घूम।
माँ लताएँ सुमन शिशुओं
को रही थीं चूम।।

विविध रंग के सुमन खिलकर
प्रकट करते भाव।
अलिगणों की गूंज भरती
नित नया ही चाव।।

एक लघु कुटिया तपोमय
भूमि पर थी शान्त।
वृक्ष मीठे फल लुटाते
पुष्प कोमल कान्त।।

2

अभी उषा भी झांक न पाई,
नभ के वातायन से।
तारागण झिलमिला रहे थे,
करते बात गगन से।।

ऋषिवर द्वार खोल कुटिया का,
धीरे बाहर आये।
वन की ओर बढ़े अब तक भी,
विहग नहीं जग पाये।।

मंत्र जाप करते चलते थे,
चलते–चलते मग में।
शान्त–भाव आरूढ़ कि जैसे,
थे आध्यात्मिक रथ में।।

लौटे सरिता तट से जब वे,
शिशु–रोदन सुन कोमल।
चलते–चलते ठिठक गये थे,
हुई हृदय में हलचल।।

लगे सोचने निर्जन वन में,
शिशु यह रोता कौन है?
माँ इसकी है नहीं यहाँ पर
प्रकृति हो रही मौन है।।

यहीं कहीं होगी आयेगी,
त्याग न सकती माता।
सोचा दो पग बढ़े रुक गये
नेह डोर का नाता।।

झुककर अपने अंक ले लिया,
कलिका सी कन्या को।
घेर थे शकुन्त मतवाले,
सद्यजात रम्या को।।

नामकरण कर दिया पिता ने,
शकुन्तला कहलाई।
सबका बनी खिलौना प्यारा,
मोहक मन को भाई।।

3

शोभित कोमल कमल कली सी,
भोली भाली शकुन्तला थी।
बढ़ने लगी मुग्ध मन मानों,
नभ की चन्द्रकला थी।।

कभी गोद में बैठ पिता की,
लिखती पढ़ती जाती।
कभी गुनगुनाकर मृदु स्वर में,
कविता गढ़ती गाती।।

अलि की गुनगुन गुंजन सुनती,
झट पीछे हट जाती।
कोयल की बोली सुनती तो,
पंचम स्वर दुहराती।।

कौतूहल से निरख प्रकृति को,
हंसती और हंसाती।
सूखे पत्ते उड़ने लगते,
उन्हें उठा कर लाती।।

शीतल मंद हवा चलती जब,
रह–रह कर इठलाती।
वन विहंगिनी वनकर वन में,
नित्य घूमने जाती।।

थिरक–थिरक नन्हें पैरों से,
नाच–नाच कुछ गाती।
केकी को नाचता देखकर,
ताली खूब बजाती ।।

लुकाछिपी कर हरिणों के संग ,
दूर कहीं छिप जाती।
अपने पालित शावक को ले,
बैठ कहीं बिरमाती।।

सामवेद गायन जब करते,
ऋषिगण पुलकित होकर।
वह भी अपना कंठ मिलाकर,
गाती सुधबुध खोकर।।

प्रेम भरी वाणी में कहती,
'पितासिरी! फिर गाओ।
मुझको भी सिखलादो थोड़ा,
गाना मुझे सिखाओ।।

मिट्टी से नित नई मूर्तियाँ,
बना–बना सुख पाती।
उनसे मीठी बातें करके,
सबका मन बहलाती।।

मृगछौने कुछ बना बनाकर,
पकड़ उन्हें दौड़ाती।
कोई मानव आकृति गढ़ती,
उसको शीश नवाती।।

कभी घरौंदा बना दिखाती,
उसमें वस्त्र बिछाती।
यह मेरा घर इसमें रहती,
कहकर मृदु मुसकाती।।

फूल–फूल को छूती,
छूकर प्रेम सहित दुलराती।
धरती पर गिर जाते जो भी,
वेणी में गुंथवाती।।

४

नित्य विकास किया करती है,
प्रकृति नटी की लीला।
नन्हा पौधा बन जाता है,
बृक्ष विशाल सजीला।।

बहते–बहते निर्मल झरना,
पावन सरि बन जाता।
वही सरित जल आगे चलकर
सागर है कहलाता।।

कंचन-वर्णा मृगनयनी वह,
चपल बालिका प्यारी।
हुई किशोरी धीरे–धीरे,
ज्यों केसर की क्यारी।।

बाला के चंचल चरणों की,
गति अब हुई अचंचल।
लज्जा पट को पहन हो गये,
झुके झुके दृग अंचल।।

बीत चुके पन्द्रह बसन्त,
अब साल सोलहवां झलका ।
रूप छटा थी बढ़ती जाती,
सुमनों से मधु छलका।।

छोड़ चला कैशौर्य सौंपकर,
निज थाती यौवन को।
कली खिल उठी महकाती सी,
अखिल विश्व उपवन को !!

अरुण कपोल हुये बाला के,
ज्यों अबीर हो डाला।
नैन हुए कजरारे मानों,
आंजा अंजन काला।।

आंचल ढुलक ढुलक जाता था,
भार बढ़ा यौवन का।
दो–दो सुमन हुए थे विकसित,
तन छलका, रस मन का।।

गुंथी हुई शेफाली से थी,
काली कुंचित अलकें।
किंचित उठकर गिर जाती थी,
लाज भरी दो पलकें।।

कानों में वह कभी सिरस के,
सुन्दर सुमन सजाती।
कमलनाल की माल उरोजों,
पर ढलकी लहराती ।।

जल से भरे कलश को लेकर,
पौधे सींचा करती।
प्यास बुझाकर सब पौधों की,
तोष बढ़ाया करती।।

भार बढ़ा यौवन का तो अब,
चाल हुई मतवाली।
पुलक कदंब हुई जाती थी,
पल पल मन की डाली।।

वासन्ती बयार ने यौवन,
को नव पाठ पढ़ाया।
खो जाती प्रायः संपनों में,
मन रहता भरमाया।।

५

गई निशा निस्तेज हुआ शशि,
ऊषा बाला आई।
हुआ प्रभात धरा पर उजली,
स्वर्णिम आभा छाई।।

पंछी सब उड़ चले छोड़कर,
अपना रैन बसेरा।
कलरव गूंज रहा खग गाते,
आया नया सबेरा।।

शकुन्तला कुटिया से बाहर,
आयी छवि छलकाई।
दिव्य दृश्य खुल पड़ा प्रकृति का,
देख दृष्टि हरषाई।।

हुई प्रणम्य सूर्य के प्रति वह,
फिर किंचित सकुचायी।
आहा कैसा है प्रभात यह,
ली उसने अंगड़ाई।।

ऋषिवर की पुकार आई,
हे'पुत्री जागो भोर हुआ'।
विहगों का कलरव जागा है,
वन में उसका शोर हुआ ।।

पालित शावक पशु पक्षी सब,
तुमको हैं सब प्यारे।
सोमतीर्थ जाता है इनको,
तेरे छोड़ सहारे।।

चिन्ता नहीं करें मैं उनको,
दाना चारा दे दूंगी।
यदि शावक मुख घायल होगा,
मैं उसको सहला दूंगी।।

गये पिता तो चली कलश
ले सरि से जल भरने को।
अनुसुइया भी संग चली थी,
पौधे सिंचन करने को।।

अठखेली करतीं वे तीनों ,
साथ–साथ थी चलतीं।
युवा और सुन्दर बालायें,
स्वर्ग अप्सरा लगतीं।।

जल भर–भर कर क्यारी में ,
जब डाल रही थीं बाला।
मंडराया था उसके मुख पर ,
भ्रमर कुटिल–सा काला।।

तू क्यों अरे सताता मुझको,
क्या अपराध किया है।
उड़ जा हट जा मेरे मुख से,
क्यों तू सता रहा है।।

इसी समय आ एक पुरुष ने ,
उसको दूर भगाया।
दोनों ने ही देखा यह, क्या,
ओट वृक्ष की आया।।

प्रियंवदा भी चकित पास वह,
शाकुन्तला के आई।
कांप रही थी कह न सकी कुछ,
मौन खड़ी सकुचाई।।

बोल क्या हुआ सखी बतादे,
अरे कौन आया है।
यक्ष या कि किन्नर है कोई,
यहाँ कहाँ आया है।।

बोली संभल सखी यह किसने,
मन का तार छुआ है।
देवदूत क्या आया कोई,
या भ्रम हमें हुआ है।।

विस्फारित नेत्रों से देखा,
तब तो वह भी घबराई।
आश्रम में कैसे आये ये,
कुछ भी समझ न पाई।।

पैरों में पदत्राण अनोखे,
वस्त्राभूषण सजते।
शोभित थी मणिमाल कण्ठ में,
कुंडल झलमल करते ।।

मुख मंडल छिप गया लता में,
स्वर्ण मुकुट ही दिखता।
राजपुरुष सा देहयष्टि से,
दिव्य मनुज सा लगता।।

लता हिली तो सम्मुख था मुख,
पूर्णचन्द्र मन भाया।
अधरों पर स्मित रेखा थी,
देख हृदय सरसाया।।

जाने कैसा दृष्टिपात कर,
वह सुपुरुष मुसकाया।
शकुन्तला का हृदय धड़ककर,
मानों मुँह को आया।।

किया प्रश्न आगन्तुक ने ही,
कौन अप्सरे! बोलो।
चितवन में जो घुला हुआ है,
वाणी में भी घोलो।।

देवि! कौन सा आश्रम, इसके,
कुलपति कौन? बताओ ।
कौन आर्ष ऋषिकन्या हो तुम?
परिचय दो समझाओ।।

भद्र कण्व ऋषि का आश्रम यह,
पुत्री शकुन्तला हूँ।
प्रियंवदा अनुसुइया सखियाँ,
इनकी केलिकला हूँ।।

देव अतिथि! सत्कार आपका,
मिले सदाशय हमको।
आप कौन हैं भद्र पुरुष अब,
दें निज परिचय हमको।

Indian Institute of Advanced Study
ACC NO. 110663
DATE 17.2.2003
SHIMLA

पुरुवंशी दुष्यंत नाम है,
और न परिचय मेरा।
भटक गया हूँ राह अजानी,
मिला न वांस बसेरा।।

देवि ! ठहरने की अनुमति दें,
क्षण विश्राम करूं मैं।
पीने को जल शीतल पाऊं,
तो श्रम भार हरूं मैं।।

शकुन्तला बोली जैसे वह,
चिर निद्रा से जागी।
अनुसुइया! जल इन्हें पिला दो,
कहकर झटपट भागी।।

गई लता के निकट नेह से,
चूम उसे दुलराया।
चढ़ी वृक्ष से लिपटी थी वह,
देख हृदय हरसाया।।

6

निज कुटिया में सो न सकी थी,
पल भर को भी शकुन्तला ।
उन नयनों ने उसके उर में,
दिया प्रणय का दीप जला।।

बार बार मन के पृष्ठों से,
सतत हटाना चाह रही।
दिवस रात भर उसकी आंखें,
निर्निमेष ही जाग रही।।

कैसे थे वे नयन न जाने,
कैसा मुझको लगता था।
मैं तो जैसे मैं न रही हूँ,
ऐसा मुझको लगता था।।

धीरे–धीरे दबे पांव वह ,
कुटिया से बाहर आई।
अन्धकार था तारे टिमटिम ,
भू पर निविड शांति छाई।।

रही सोचती कुटिया में वे,
स्वप्नों में खोये होंगे।
शांरग रव की देखरेख में,
अतिथि बने सोये होंगे।।

चरण बढ़ चले उधर अचानक,
वातायन से झांक रही।
थके बिसुध नृप सोते थे,
वह चाह भरी सी ताक रही।।

फिर अपने को संयत करके,
चली सखी संग जल भरने।
नित्य और नैमित्तिक सारे,
कर्म लगी झटपट करने।।

पुष्प चयन करने को निकली,
नृप कुटिया से आये थे।
देवि हमें आज्ञा दें हम तो,
यों ही पथ भरमाये थे।।

आभारी उस मृग के जिसने,
हमको यह पथ दिखलाया।
यह अपना सौभाग्य आप तक,
इस आश्रम में ले आया।।

शकुन्तला की उठी अचानक,
लज्जा से आनत पलकें।
भौंहों पर थीं लगी झूलने,
काली घुंघराली अलकें।।

हुआ दृष्टि विनिमय,दो नयना,
उन नयनों से टकराये।
भूल गये फिर अपने को ही,
पलकें भी न गिरा पाये।।

पुरुष रत्न यह कैसा शोभित,
कंचन सा स्वर्णिम तन है।
लम्बी बाहें चौड़ी छाती,
सरिता सा चंचलपन है।।

तो देवी! अब चलूं कभी जब,
भाग्य जगा तो आऊँगा।
जीवन होगा सफल आपके,
दर्शन कर सुख पाऊँगा।।

बोली प्रियंवदे सखि रोको,
मान्य अभी क्यों जाते हैं।
वैभव में रमने वाले कब,
वन उपवन में आते हैं।।

परिचय भी तो हुआ न पूरा,
वन भी घूम नहीं पाये।
अतिथि देवता ठहरें कुछ दिन,
भाग्य हमारे जग जायें।।

देवि! आपका आग्रह है तो,
अभी और रुक जाऊँगा।
ऋषिवर का शुभ दर्शन कर लूं,
तभी लौटकर जाऊँगा।।

दृष्टि डालकर शकुन्तला पर,
भेद भरा संदेश दिया।
जला दिया बाला के उर में,
प्रणय प्रीति का एक दिया।।

मौन निमन्त्रण चितवन में था,
हाँ उसमें संकोच बना।
पलकें उठकर झुकीं एक क्षण,
था लज्जा का भार घना।।

आओ बैठें स्वच्छ शिलापर,
इस तरुवर की छाया में।
प्रकृति सुखद दे रही शांति है,
वन की मोहक माया में।।

आगे बढ़कर नृप ने उसका,
हाथ पकड़ कर बिठलाया।
विद्युत सी छू गई रगों का,
यौवन सागर लहराया।।

आकर्षण से खिंचकर वह भी,
नृप के और निकट आई ।
बैठ गई वह उसी शिला पर,
भूली सी थी तरुणाई।।

प्रेमालाप चला दोनों में,
मुग्ध परस्पर बद्ध हुए।
मन्मथ रति खिलखिला रहे थे,
पंचवाण संधान किए।।

वन विहार भी किया उन्होंने,
प्रेमालिंगन छन्द हुये।
लहरा उठा प्रणय का सागर,
अधरों ने जब अधर छुए।।

जगी वासना तन में, मन में ,
दोंनों के तन एक हुये।
लता लिपट कर मिली वृक्ष से,
यक्ष –यक्षिणी एक हुये।।

शुभ गन्धर्व विवाह रचाया,
वसुधा ने शृंगार किया।
बरसे सुमन लताओं से ज्यों,
शुभाशीष उपहार दिया।।

ब्याह रचाया दोनों ने तो,
सारा उपवन महक उठा।
आशीर्वाद मिला ऋषियों का,
द्विज समाज भी चहक उठा।।

७

अपने प्रणय प्रसंगों को नृप,
राजकाज में भूल गये।
जीवन की उलझन–सुलझन के,
झूले में वे झूल गये।।

इस बाला ने प्रेम पंथ पर,
अपना तन–मन वार दिया।
एक दृष्टि के अनुबन्धन में,
सारा जीवन हार दिया।।

युग युग से दुहराई जाती,
क्यों फिर वही कहानी।
प्रणय सोख लेता जीवन की,
सरिता का सब पानी।।

बालू सी सूखी रह जाती ,
रस का झरना रही कभी ।
जीवन स्रोत सूखते सारे,
प्रणय कथा अनकही सभी।।

वही वकुल के वृक्ष लताएँ,
सुमनों की हंसती क्यारी।
वे पगडंडी, वे ही कुंजें,
सूनी आज पड़ी सारी।।

कहाँ गई वन की वह सुषमा,
गंधहीन ये सुमन खिले।
बिछुड़े बिछुड़े से लगते ये,
कल तक थे जो हिलेमिले।।

हे ऋतुराज आज तुम पाहुन,
बन इस वन में आये हो।
कोई सुन्दर सपना मेरे ,
जीवन के हित लाये हो।।

तो उनको अपने संग लाओ,
आओ स्वागत कर लेंगे।
गलबाहीं दे वनविहार कर,
व्यथा परस्पर हर लेंगे।।

कमल पत्र लाकर सखि दे तो,
भेजूँ मैं प्रिय को पाती।
वे आयेंगे निश्चय मुझ तक,
शीतल होगी तब छाती।।

पाती लेकर कौन जायगा,
दूर देश प्रिय की नगरी।
कैसे पहुँचेगी यह पाती,
कांटों से सब राह भरी।।

हा! कोकिल की मधुर कुहक भी,
हूक उठाने है लगती।
नैन सीपियाँ भी पलभर में,
मोती बरसाने लगती।।

पीत वर्ण कृशकाय हो गई,
कंचन वर्णी शकुन्तला।
पैर हुये थे भारी उसके,
छिपी कोख में चन्द्रकला।।

8

बड़ी हुई वन के वैभव ने,
उसे बनाया था रानी।
हिरणों के संग खेलकूद कर,
करती थी जो मनमानी।।

कभी मालिनी की लहरों के,
साथ केलि कर हँसती थी।
गगन घटायें देख मयूरी,
सी,जो नाचा करती थी।।

जहाँ बैठती स्वच्छ शिलायें,
सिंहासन बन जातीं।
जहाँ लेटती कोमल पत्तों,
की शैया बुन जाती।।

हंसते उसे देख खिलजातीं,
पुष्पों की नव कलियाँ।
जब वह गाती तो गा उठतीं,
घूम घूम भ्रमरावलियाँ।।

वन विहंगिनी सी उड़ती थी,
विधि ने पाश गिराया।
पंख फड़फड़ाती है निशि दिन
कुछ भी हाथ न आया।।

क्या था पता मिलन के क्षण वे,
जाकर कभी न लौटेंगे।
कौन बयार ले गई उनको,
क्या वे कभी न लौटेंगे।।

जाने कैसा था मुहूर्त वह,
उन्हें देखना पाप हुआ।
चाहा था वरदान बनाना,
पर वह तो अभिशाप हुआ।।

बजी नहीं द्वारे पर नौबत,
लग्न पत्रिका भी न चली।
पीले हाथ हुए कब मेरे,
क्यों मेंहदी की बात टली।।

आई नहीं बारात यज्ञ की,
वेदी भी कब बनी भला।
यज्ञ कुंड में ज्वाल जली कब,
नहीं भाग्य में पुण्य फला।।

हा! गन्धर्व विवाह रचाया,
इसीलिए पछताती हूँ।
बात मान ली थी क्यों उनकी,
समझ नहीं मैं पाती हूँ।।

होता यदि वैदिक विवाह तो,
कुछ तो बंधन कस जाता।
आने वाले बालक को हा!
नाम पिता का मिल जाता।।

प्रेम किया था प्रियतम ने तो,
क्यों वे मुझको भूल गये।
प्रेम नहीं था तो वह क्या था,
क्यों दे तीखे शूल गये।।

पुत्र हुआ तो कौन उसे फिर,
निज अधिकार दिलायेगा।
राजा का वह झिलमिल वैभव,
कहाँ उसे मिल पायेगा।।

नहीं कही जाती है अब तो,
व्यथा कथा इस जीवन की।
क्यों आती सन्तान उदर में,
बन गहरी पीड़ा मन की।।

तभी किसी का स्वर गूंजा,
गुरुदेव पधार रहे हैं।
चलें सभी स्वागत कर लायें,
पक्षी चहक रहे हैं।।

पिताश्री आ गये जान वह,
दौड़ी बाहर आई थी।
लेकिन ठिठक गई क्षण भर को,
मन ही मन सकुचाई थी।।

हाय! पिताश्री जानेंगे सब,
क्या उनसे कह पाऊँगी।
मैंने पाप किया है कैसे,
मुक्त कभी हो पाऊँगी।।

ऋषि ने आगे बढ़कर पूछा,
पुत्री क्या है बात हुई।
क्यों उदास सी दीख रही हो,
ऐसी भी क्या बात हुई।।

मात गौतमी ने धीरे से,
उनसे कोई बात कही।
सुनकर चिंतित हुए एक क्षण,
बोले कोई बात नहीं।।

धैर्य धरो तुम होती रहती,
राजकाज की बात बड़ी।
भूल नहीं सकते वे तुझको,
हों विपदायें लाख खड़ी।।

उनका अंश यहाँ पलता है,
उनको आना ही होगा।
नहीं अन्यथा शकुन्तला को,
अपने घर जाना होगा।।

शारंगरव को बुला कहा फिर,
'प्रिय जाओ तुम समझाया।
शकुन्तला को विदा करेंगे,
जाने का अवसर आया।।

वत्स चले जाओ तुम सत्वर,
शकुन्तला को ले जाओ।
उन्हें सौंप कर थाती उनकी,
आश्रम में वापस आओ।।

मात गौतमी नेह वश्य ही,
शकुन्तला के साथ चली।
दोनों सखियाँ रोते–रोते,
बहुत दूर तक गईं चलीं।।

पुत्री विदा हो रही सुनकर,
विकल हुए आश्रम वासी।
बचपन बीता इसी भूमि पर,
होगी अब पतिगृह वासी।।

जिस मृग को पाला था पागल,
दौड़ा–दौड़ा आया।
लगा खींचने उत्तरीय को,
करुणा से था अकुलाया।।

तोता, मैंना, कोकिल, चकवा,
थे उदास पंछी सारे।
पालित पशु सब अश्रु बहाते,
सब वियोग के थे मारे।।

हुए कण्व ऋषि भी शोकाकुल,
घड़ी विदा की थी आई।
उनके वैरागी नयनों में,
विरह वेदना घिर आई।।

भरे गले से बोल उठे वे,
पुत्री भूलो यह जीवन।
जाओ तुम माधवी लता सी,
तोड़ प्रकृति से भी बंधन।।

छत्र करेगा छाया तुझपर,
भूल सभी को तुम जाना।
रेशम के कोमल गद्दों पर,
सोना उसमें सुख पाना।।

जब जब मंद पवन आयेगी,
आश्रम में इठलाती सी।
तब तब कोकिल जैसी तूही,
आ पहुँचेगी गाती सी।।

तू तो वन को भूल जायगी,
पर यह तुझे न भूलेगा।
पत्ता पत्ता तेरी यादों में,
झूले सा झूलेगा।।

जाओ हे वन देवी,
मंगल हो वन देवी।

८

शकुन्तला आगे बढ़ती पर,
बार बार मन अकुलाता ।
जाने क्या होगा भविष्य में,
क्षण-क्षण हृदय कांप जाता।।

उपालंभ मैं दूंगी उनको,
ताना–बाना बुन जाता।
भूल गये क्यों प्रियतम मुझको,
हे मेरे जीवन दाता।।

यदि पहचान नहीं पायेंगे,
तो पहचान बताऊँगी।
गोपनीय कुछ बातें कहकर,
सब रहस्य समझाऊँगी।।

कहा गौतमी ने हे बेटी,
डगमग करती चलो नहीं।
कांटे, कंकड़ चुभें न मग में,
राह भूलकर चलो नहीं।।

स्वागत किया नृपति ने इनका,
ऋषि आश्रम से आये हैं।
किन्तु नहीं स्मृतियाँ जागी,
क्योंकर यह सब आये हैं।।

राजा तो सब भूल चुके थे,
शंका थी जो वही हुआ।
"क्या कहती हैं आप गौतमी ,
इनसे नहीं विवाह किया ।।

मैं तो नहीं जानता इनको,
फिर पत्नी कैसे मानूं।
श्रेष्ठ राज्य की मर्यादाएँ,
छोड़ इन्हें कैसे जानूं।।

क्षमा करें हे बाले कोई,
अन्य पुरुष आया होगा।
फिर दुष्यंत नाम से तुमको,
छल कर भरमाया होगा।।

सुनकर नृप की बात उठाकर,
पलकें शंकित हो देखा।
दूर दूर तक नहीं दिखाई,
पड़ी प्रणय की वह रेखा।।

ये तो छलिया पुरुष न देंगे,
ये कोई प्रतिदान कभी।
कैसे व्यथा सहूँ अब माता!
होगा क्या भगवान अभी।।

शारंगरव ने कहा कि अब तो,
व्यर्थ सोच करना है।
पहले जो हो चुका उसे ,
दुर्भाग्य मानकर चलना है।।

कहा गौतमी ने हे पुत्री,
आश्रम ही चलना होगा।
जो भी आज्ञा देंगे गुरुवर,
शिरोधार्य करना होगा।।

शकुन्तला क्या कहे विवश
बस केवल रोती ही जाती।
हे ईश्वर! हे दैव! मृत्यु दे,
बार बार कहती जाती।।

आंसू से भीगी आंखों की,
दृष्टि गगन में उठ जाती।
सारी सृष्टि उसी में डूबी,
करुण कथा थी दुहराती।।

इसी समय कुछ हुआ कि,
कोई ज्योति गगन से आई।
नारी सी थी शकुन्तला को,
लेकर दूर सिधाई।।

१०

एक रात सुख की शैया पर,
राजा थे उद्विग्नमना।
जाग रहे थे करवट लेते,
अंधकार था घोर घना।।

कहीं रुदन का स्वर फूटा,
यों कोई नारी रोती थी।
बार बार हिचकी ले लेकर,
बीज व्यथा के बोती थी।।

वातायन से झाँक उठे वे,
उठकर फिर बाहर आये।
नहीं दृष्टि में कुछ भी आया,
स्वर ही केवल सुन पाये।।

प्रहरी! जाकर देखो कोई,
नारी हा क्यों रोती है।
उससे पूछो शान्त विजन में,
विकल किसलिए होती है।।

क्षमा करें महाराज हमारे,
सैनिक की पत्नी नारी।
परित्यक्ता कर गया निर्दयी,
रोती बेबस बेचारी।।

इस सैनिक से कहो कि वह कल,
राजसभा में आ जाये।
यदि अपराधी है वह तो फिर,
दण्ड किये का पा जाये।।

रोती थी जो नारी उनमें ,
ऐसी करुणा जगा गई।
अस्थिर हो बेचैन हुए नृप ,
स्मृतियाँ भी जगा गई।।

हा शकुन्तले! नया रूप धर,
तुम ही थी क्या आईं।
याद दिलाने बीती बातें,
छद्म वेश में आईं।।

उन स्वर्णिम प्रहरों को कैसे,
हाय सहज क्यों भूल गया।
मैं हतभागी ऐसे कैसे प्रिय,
प्रेयसि को भूल गया।।

उन स्वर्णिम प्रहरों को कैसे,
हाय सहज क्यों भूल गया।
मैं हतभागी ऐसे कैसे
निज, प्रेयसि को भूल गया।।

भूल गया उस वन देवी को,
जिसने पावन प्रेम दिया।
विस्मृत हुई लता कुंजें सब,
जिनमें प्रणय विहार किया।।

कैसे पाऊँगा प्रेयसि को,
क्या मुझको करना होगा।
भटकूंगा वन–वन में जाकर,
खोज उसे लाना होगा।।

11

खोज रहे थे वन को नृप,
अप्सरा तीर्थ में पहुँच गये।
देख तपोवन का सा स्थल,
चकित और मन मुग्ध हुये।।

अहा! खुला सौन्दर्य प्रकृति का,
निरख उठे वे चारों ओर।
संवरी हुई लता कुंजों में,
चहक रहे पंछी कर शोर।।

बिछा हुआ था हरा बिछौना,
खेल रहे कुछ बालक खेल।
कुदक रही थी गेंद घास पर,
सभी रहे थे उसको ठेल।।

कहीं रूपसी क्रीड़ा करती,
घूम रही थी उपवन में।
वेणी सजी विविध पुष्पों से,
नृत्य कर रही मधुवन में।।

करती थीं स्नान सरित में,
क्रीड़ा करती थीं कोई।
दीपशिखा सा रूप खिला था,
सद्यस्नाता थी कोई।।

एक ओर खिलखिला रहे थे,
युवक बात करते-करते।
फूल खिल रहे थे डालों पर,
हँसते थे झरते-झरते।।

हिंसक पशु भी यहाँ विचरते,
कैसा वातावरण प्रभो।
सिंह दहाड़ रहे हैं यह तो,
है विशिष्ट स्थान प्रभो।।

एक सिंह शावक के सन्मुख,
था बालक निर्भीक खड़ा।
दांत गिन रहा था वह उसके,
खुला हुआ उसका जबड़ा।।

वह बालक मुड़ कर राजा को,
कौतूहल से निरख उठा।
इस वन में यह ठाठ कहाँ से,
आया मानों पूछ उठा।।

वे भी रहे देखते अपलक,
नेह हृदय का छलक उठा।
किसका पुत्र, कौन है माता;
उत्तर पाने ललक उठा।।

पूछ रहे हे वीर पुत्र! तुम,
अब तुमसे कुछ परिचय हो।
माता–पिता कौन सा घर है,
दूर हृदय का संशय हो।।

बोल उठा निर्भीकमना वह,
मेरी मां है शकुन्तला।
कौन पिता मैं नहीं जानता,
मैं माँ के ही लाढ़ पला।।

अहो! तात तुमको तो मैंने,
आकृति से पहचान लिया।
माँ है शकुन्तला इस परिचय,
से मैंने सब जान लिया।।

इसी समय कोई स्वर गूंजा,
मां ने कहा भरत आओ।
तो बालक का नाम भरत है,
नृप ने कहा इधर आओ।।

माँ ने मुझे बुलाया है मैं,
निकट उन्हीं के जाऊँगा।
लेकर उनको साथ आपसे,
परिचय करने आऊँगा।।

भरत गया तो मन में उनके,
अनजानी सी हूक उठी।
जाने कब आयेगा बालक,
सोई ममता कूक उठी।।

भरत उपस्थित हुआ वहां फिर,
माता का पकड़े आंचल।
प्राण प्रिया को देख मच गई,
राजा के मन में हलचल।।

देखो माँ ये ही आये हैं,
कैसे सुन्दर दिखते हैं।
झिलझिल करते रेशम जैसे,
वस्त्राभूषण सजते हैं।।

हुआ दृष्टि विनिमय तो दोनों,
हुए परस्पर आकर्षित।
दोनों के उर दो प्रकार के ,
भावों से थे आवेषित।।

झिलमिल वस्त्र पहन कर ही क्या,
कोई मानव कहलाता।
ऐसा होता तो धनवाला,
गुणवाला ही कहलाता।।

मुझको तो अवकाश नहीं है,
इनसे बातें क्या कर लूं।
इन्हीं क्षणों में क्यों न किसी की,
मैं सविनय सेवा कर लूं।।

सेवा? हाँ राजन अब सेवा,
ही सम्बल जीवन का है।
होता है कल्याण जगत का,
सुख अपने भी मन का है।।

''क्षमा करो है देवि मुझे तो,
विस्मृतियों ने घेरा था।
व्यस्त अधिक था राजकाज निस,
कर्तव्यों का घेरा था।।

मैंने समझा कोई नारी,
स्वार्थ साधने आई है।
कल बल छल से पत्नी बनकर,
मुझको छलने आई है।।

'नारी छलना' यही सदा से,
पुरुष वर्ग कहता आया है।
इसकी गरिमा महिमा से ,
अनजान सदा रहता आया है।।

क्या मैं वैभव का सुख पाने,
पास तुम्हारे आई थी।
क्या असत्य भाषण करती थी,
मैं छल करने आई थी।।

छली! मुझे छलनामय कहकर,
तुमने अधिक रुलाया था।
हो कठोर अपमानित करके,
मुझको अधिक सताया था।।

तुम तो पुरुष उसी श्रेणी के,
भोग लिया फिर भूल गये।
हा निष्ठुर ऐसे निकले तुम,
देकर तीखे शूल गये।।

क्या बतलाऊं देवि आपका,
अपराधी हूँ क्षमा करो ।
मेरे साथ चलो अब मुझको ,
सार्थक और पवित्र करो।।

थकित हो गया तुम्हें खोजते,
पूरी हुई तपस्या है।
किसकी? मेरी या कि तुम्हारी,
अब तो यही समस्या है।।

साथ नहीं चल पाऊँगी मैं ,
चिर वियोग सहना होगा।
निज अतीत लौटा न सकूँगी,
वन में ही रहना होगा।।

यौवन के वे वर्ष सुनहरे,
सदा–सदा को छूट गये।
मधु के सारे स्रोत ढुलक कर ,
बालू में ही सूख गये।।

रहा नहीं कुछ विरह व्यथा ने,
लूट लिया हैं मेरा सब धन।
शेष नहीं जीवन में कुछ भी,
नष्ट हुआ यह कंचन तन।।

वनवासी भोले भाले हैं,
इनकी सेवा करती हूँ।
कलावन्त ये इनमें ही मैं,
नव–नव जीवन भरती हूँ।।

चली जाऊँगी साथ आपके,
होंगे ये असहाय शिथिल।
कौन समस्या सुलझायेगा,
कौन इन्हें देगा संबल।।

बालक भरत कभी माता को,
कभी पिता को तकता था।
उसका कोमल हृदय गूढ़ ये,
बातें समझ सकता था।।

घबराकर वह बोला माता!
तुमसे दूर न जाऊँगा।
अगर चलेगी तुम मेरे संग,
तभी पितृगृह जाऊँगा।।

शकुन्तला ने सुनी पुत्र की,
ये अबोध बातें भोली ।
रही सोचती कुछ पल योंही ,
आत्मलीन सी फिर बोली।।

सोच यही है प्रिय सुपुत्र का,
प्यार मुझे खोना होगा।
पिता–पुत्र के मध्य न आकर,
एकाकी रहना होगा।।

हो कठोर वह बोल उठी फिर,
आप प्रयाण करें राजन।
पुत्र आपका है यदि चाहें,
इसको ले जायें राजन।।

मैं अपवाद नहीं सह सकती,
जो प्रायः लग जाता है।
सीता माँ को भी कब छोड़ा ,
जग का ऐसा नाता है।।

हाथ पकड़ कर भरत पुत्र का,
पकड़ा दिया पिता कर में।
आँसू सोख लिये आँखों के,
व्यथा घूंट ली अन्तर में।।

रही देखती जाते सुत को,
पिता संग माँ शकुन्तला।
आज अकेली, सदा अकेली,
खड़ी रह गई शकुन्तला।।

विश्वामित्र मेनका की थी,
पुत्री शकुन्तला।
रूप और सौन्दर्य मिला पर,
थी अभागिनी शकुन्तला।।

ऐसी पुत्री जिसको जग में,
कोई भी सुख मिला नहीं।
लाई थी दुर्भाग्य लिखा,
सौभाग्य कभी भी मिला नहीं।।

यह विस्मृता आज भी अपनी,
कथा सभी से कहती है।
आंखो में आंसू भर कर वह,
व्यथा आज भी सहती है।।

नारी ने वरदान बनाया,
नर के अभिशापों को।
सदा समोया अपने उर में,
नर के सन्तापों को।।

मानवता की धात्री बनकर,
देती जग को दान है।
हाय उपेक्षित होने पर भी,
नारी सदा महान है।।

डॉ. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ : एक परिचय

जन्म स्थान : मथुरा (उ.प्र.)
शिक्षा : एम.ए., पीएच.डी.
कार्य क्षेत्र : पूर्व प्राचार्या–
किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर
विद्यालय, मथुरा (उ.प्र.)
संप्रति : साहित्य लेखन

प्रकाशित कृतियाँ:

1. हिन्दी साहित्य में कृष्ण (शोध प्रबंध) – 1960
2. साधना (कविता संग्रह) – 1960
3. गीले नयना, भीगी पलकें (गीत संग्रह) – 1970
4. बांसुरी हूँ मैं तुम्हारी (गीत संग्रह) – 1980
5. स्मृतियों के पोस्टर (अतुकान्त कविता संग्रह) – 1995
6. चांदी की पायल (कहानी संग्रह) – 1991
7. कपास के फूल (कहानी संग्रह) – 1993
8. प्रकृति और हम (पर्यावरण) – 1992
9. ब्रज की लोक कहानियां (लोक साहित्य) – 1990

बाल साहित्य

10. आ जा री निंदिया (लोरियाँ) – 1995
11. भोर भई अब जागो प्यारे (प्रभातियाँ) – 1995
12. प्यारे–प्यारे ये जीव जगत के – 1997
13. नन्हें मुन्ने गायें गीत (शिशु गीत) – 1998
14. हंस मोती चुगता है (बड़े बच्चों के लिए) – 1999

प्रकाश्य कृतियाँ:

1. फूल हंसते हैं – फूलों के विषय में बच्चों के लिए
2. ब्रज के लोकगीतों का संग्रह (हिन्दी अनुवाद सहित)
3. ब्रज लोकसाहित्य में पर्यावरण
4. अपनी कहानी (जीवनी)

5. परित्यक्ता (खण्ड काव्य)

आकाशवाणी के दिल्ली, लखनऊ, जयपुर, अहमदाबाद, मथुरा, आगरा, जम्मू तथा श्रीनगर केन्द्रों से विविध विधाओं में प्रसारण, गीतों का मथुरा आकाशवाणी से निरन्तर गायन।

प्रतिष्ठित हिन्दी पत्रिकाओं यथा– 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'कादम्बिनी', 'मनोरमा', 'विश्व विवेक(अमेरिका) आदि में कविता, कहानी, निबंध आदि का ससम्मान प्रकाशन। बाल–पत्रिका–'बाल हंस', 'सुमनसौरस', 'नन्दन', 'बालभारती', आदि में कविता, गीत, कहानी प्रकाशित।

उपाधियाँ और सम्मानः

साहित्य महोपाध्याय	– हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
साहित्य मणि	– बाबू वृन्दावनदास हिन्दी संस्थान
विदुषी रत्न	– अखिल भारतीय ब्रज साहित्य संगम
सारस्वत सम्मान (कवयित्री के रूप में)	– भारतीय साहित्य परिषद्, प्रयाग
बाल कवयित्री	– अन्तराष्ट्रीय बाल वर्ष में बाल परिषद्
लोक साहित्य वाचस्पति	– ब्रजलोक साहित्य सम्मेलन, एतमादपुर
साहित्य सरस्वती	– कला संस्कृति साहित्य विद्यापीठ, लखनऊ
राष्ट्रभाषा आचार्य	– अखिल भारतीय साहित्यक अभिनन्दन समिति
बाल सम्मान	– भारतीय बाल कल्याण संस्थान, कानपुर
सुभद्राकुमारी चौहान सम्मान	– उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा बाल साहित्य के लिए है।

इस समय आप आकाशवाणी मथुरा सलाहकार समिति की सदस्य है।

वर्तमान पताः सरोजनिलयम्, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग,
मथुरा– 281001 (उ.प्र.)

Indian Institute of Advanced Study
ACC NO. 110663
DATE..... 17.2.2003
SHIMLA

Library IIAS, Shimla
H 811.8 K 959 V
00110663